भरतनाट्यम् का प्रस्तुतिक्रम – मार्ग

डॉ. खिलेश्वरी पटेल
असिस्टेंट प्रोफेसर
(नृत्य विभाग)
बनारस हिन्दू विष्वविद्यालय,
वाराणसी

भारतीय शास्त्रीय नृत्य भरतनाट्यम् एक ऐसी शैली है जो सौंदर्य और कलात्मकता से परिपूर्ण है। मंदिरों में पूजा विधि के रूप में प्रस्तुत की जाने वाली इस कला का आज भी अपना विशिष्ट महत्व एवं स्थान है। यह शैली सुनियोजित एवं संहिताबद्ध होने के साथ–साथ आध्यात्म और संस्कृति का भी प्रतीक है। मंदिरों में की जाने वाली इस नृत्य परंपरा में समय के साथ इसके हर एक पहलू का विकास और नवीनीकरण हुआ है। भरतनाट्यम् को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के क्रम को भी एक नवीन व कलात्मक स्वरूप दिया गया है जिसका श्रेय प्रसिद्ध तंजौर भाइयों को जाता है। भरतनाट्यम् के इस प्रस्तुति क्रम को मार्गम् के नाम से जाना जाता है। मार्गम् के शाब्दिक अर्थ से ही यह स्पष्ट होता है कि इसका तात्पर्य मार्ग, रास्ता अथवा क्रम से है। मार्गम् की संरचना बहुत ही संतुलित एवं व्यवस्थित ढंग से की गयी है। प्रसिध्द नर्तकी टी. एस. बालसरस्वती जी के अनुसार ''अलारिपु, जतिस्वरम्, शब्दम्, वर्णम्, पदम्, तिल्लाना व श्लोकम् भरतनाट्यम् का पारम्परिक एवं सही क्रम है। उन्होंने भरतनाट्यम् के मार्गम् की तुलना एक भव्य रूप से संरचित मंदिर एवं वहाँ होने वाली पूजा प्रक्रिया से की है – सर्वप्रथम अलारिपु के माध्यम से गोपुरम् में प्रवेश किया जाता है। इसके पश्चात् जतिस्वरम् करते हुए अर्धमण्डप में व शब्दम् के माध्यम से मुख्य मण्डप में और वर्णम् करते हुए भगवान के पवित्र स्थान में प्रवेश करते हैं। पदम् करने में हमें संतोष का अनुभव होता है, पदम् के माध्यम से अपनी बाहरी सीमा से मंदिर के गर्भगृह में पहुंचते हैं। यह वह समय होता है जब पूजा की तेज रोशनी और वाद्यों की धुन धीमी होती चली जाती है, मंत्रोच्चार एवं पवित्र आरती आदि समाप्ति की ओर होती है। इसके पश्चात् इस प्रक्रिया को विराम देते हुए तिल्लाना किया जाता है जो अंत में जलाए जाने वाले कपूर की आरती के समान प्रतीत होती है।''

भरतनाट्यम् मार्गम् का प्रथम पद है– अलारिपु। रंगमंच पर प्रस्तुति का आरंभ इस पद से किया जाता है। ''दक्षिण भारतीय भाषाओं में अलर का अर्थ फूल और इलिपु का अर्थ अर्पित करना होता है।'' जिस तरह सर्वप्रथम ईश्वर को पुष्प अर्पित किया जाता है ठीक उसी तरह एक भरतनाट्यम् नर्तक पुष्प रूप में स्वयं को दर्शकों के समक्ष अर्पित करता है। कुछ अन्य संदर्भों से यह ज्ञात होता है कि ''अलरू एक द्रविड़ शब्द है और द्रविड़ भाषाओं में इसका शाब्दिक अर्थ है– खिलना और इसके नाम का शब्दार्थ है– पूरा खिला हुआ फूल। कन्नड़ में भी अर्ल, अरल, अरलु का अर्थ है क्रमशः फैलना, फूला हुआ, खुलना और खिलना (पुष्पित)। तेलुगू में अलरू का अर्थ पुष्प के समान खिलना अथवा फैलना।

''अलारिपु एक क्रियात्मक संज्ञा है जो तमिल शब्द अलारिम्बु से आया है। तमिल एवं दूसरी द्रविड़ भाषाओं में 'क–च–त–ट–प' या.ब.ज.जी.चद्ध इन शब्दों का उच्चारण नाक से किये जाने पर 'ग–ज–ड–ध–ब' यह.र.क.की.इद्ध बन जाते हैं और इसी कारण अलारिंपु को अलारिम्बु उच्चारित किया जाता था। नायक साम्राज्य में इन अनचाही कमियों को दूर करने हेतु अनुनासिक (नाक से निकलने वाले) शब्द को हटा दिया गया एवं अलारिपु शब्द को अर्थपूर्ण बनाने एवं इसे स्वीकृति प्रदान करने हेतु दुगुने व्यंजन प्रयोग किये गए और तभी से यह शब्द भरतनाट्यम् के प्रथम पद (आइटम) को दर्शाने वाला एक वैश्विक शब्द बन गया।'' अलारिपु में केवल सोल्लकट्ट का प्रयोग किया जाता है अर्थात् इसमें अर्थरहित बोलों का प्रयोग किया जाता हैं। यह जातियों (तिस्त्र, चतुस्त्र, खण्ड, मिश्र, संकीर्ण) पर आधारित होता है। यह प्रायः एकताल में अथवा चापु ताल में किया जाता है। इसका समापन कुछ आवर्तनों की छोटी जति से किया जाता है। अलारिपु में शरीर के दोनों हिस्सों का समान रूप से संचालन किया जाता है। अर्थात् दाहिने अंग से की जाने वाली क्रियाएँ, ठीक उसी प्रकार से बांयी ओर से भी की जाती है। हाथ–पैर के लयबध्द संचालनों एवं आकृतिबंधों का सौंदर्य ही इस पद (आइटम) की प्रमुख विशेषता है।

प्रस्तुतिकरण के द्वितीय चरण में जतिस्वरम् प्रस्तुत किया जाता है। यह भी शुध्द नृत्त की श्रेणी में आता है।। इसका आरंभ तालबध्द जति से किया जाता है और इसके पश्चात स्वरों पर आधारित कोरवै किया जाता है। अर्थात् इसमें जति एवं स्वर दोनों का समन्वय होता है। इसका प्रारूप तीन भागों में विभाजित होता है– पल्लवी, अनुपल्लवी एवं चरणम्। इसमें एक से अधिक चरण हो सकते हैं। जतिस्वरम् किसी एक निश्चित राग व ताल में अथवा कई रागों एवं तालों में निबध्द हो सकता है। सामान्यतः यह चतुस्त्र गति में किया जाता है। जतिस्वरम् में स्वरम् की प्रत्येक पंक्तियों की संख्या पूर्व निर्धारित होती है। स्वरों के अनुरूप अडवुओं को पिरोकर जति अथवा कोरवै को एक स्वरूप प्रदान किया जाता है।

मार्गम् के तीसरे क्रम में प्रथम अभिनय पद शब्दम किया जाता है। ''शब्दम् को यशोगीत एवं वर्णनगीत के नाम से भी जाना जाता था किन्तु शब्दम् अधिक प्रचलित परिभाषिक शब्दावली रही।''

यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि ''शब्दम् का समापन मुस्लिम अभिवादन से किया जाता था। (दक्षिण भारतीय नृत्य पर मुस्लिमवाद के ज्ञात प्रभावों में से एक) सबसे पहले दोनों हथेलियाँ सीने के समक्ष, फिर दर्शकों की ओर इंगित करते हुए, हथेलियों को ऊपर माथे के पास रखा जाता था। यह अभिवादन की प्रक्रिया सलामरी के नाम से जानी जाती थी, किन्तु बाद में इसे हिन्दु तरीके से चरणम् में परिवर्तित कर दिया गया।''

''रघुनाथ नायक (1600–1630) एवं उनके पुत्र विजय राघव नायक (1633–1673) के समयकाल में यह पद शब्दम् के नाम से अधिक प्रचलित था। विजय राघव के दरबार में शब्दम की दो प्रसिध्द नर्तकियाँ थी जिनका नाम था– चम्पकवली एवं चन्द्रलेखा। जिनमें से चम्पकवली को शब्द चूड़ामणी एवं चन्द्रलेखा को शब्द चिंतामणी नामक उपाधि से सम्मानित किया गया था। शब्दम् को यशोगीत एवं वर्णनगीत कहा जाता था किन्तु 'शब्दम' नाम अधिक प्रचलित था।'' नर्तकी हस्त मुद्राओं एवं चेहरे के भावों से गीत के शब्दार्थ एवं उसमें छुपे भावों की व्याख्या करती है। इसमें साहित्य की पंक्तियों पर अभिनय एवं प्रत्येक साहित्य के मध्य में एक छोटी जति की जाती है। शब्दम् में नृत्त एवं अभिनय दोनों ही निहीत है। शब्दम् में पैरों का संचालन सीमित होता है अर्थात अभिनय के आवश्यकतानुरूप पद संचालन किया जाता है। गीत के अर्थ को अभिव्यक्त करना अधिक महत्वपूर्ण होता है। अंग संचालन एवं हस्त मुद्राएँ प्रमुख भूमिका निभाते हैं। यह मुख्यतः मिश्रचापु ताल में ही निबध्द होते हैं। शब्दम् का आरंभ नृत्त अर्थात् एक छोटी सी जति से होता है। इसके पश्चात् साहित्य में अभिनय किया जाता है। प्रत्येक खण्ड के मध्य में भी नृत्त भाग होता है जो गीत के पंक्तियों के एक भाग से दूसरे भाग में जाने अथवा उनमें भिन्नता दर्शानें में सहायक होती है। पहले शब्दम् मुख्य रूप से कांबोजी राग में ही निबध्द होता था और साहित्यों के बीच में किये जाने वाले तीरमानम् (नृत्त भाग) को भी इसी राग में गाया जाता था। किन्तु अब शब्दम् रागमालिका में भी किया जाता है अर्थात् प्रत्येक साहित्य भाग अलग–अलग रागों में होता है। इसके मध्य में किया जाने वाले जाति भी, अगले साहित्य में प्रयुक्त होने वाले राग में ही गाया जाता है किन्तु शब्दम् का प्रारंभिक राग हमेशा कांबोजी ही होता है।

शब्दम् के बाद प्रस्तुतिकरण का अगला चरण होता है– वर्णम्। यह भरतनाट्यम् का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण पद होता है। इसमें शुध्द नृत्य और अभिनय का संतुलित मिश्रण होता है। यह भरतनाट्यम् के सभी पदों में से अधिक कठिन पद होता है। वर्णम् शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं जैसे– 'वर्ण' शब्द का तात्पर्य रंग से भी लिया जा सकता है, वर्णाक्षर में प्रयुक्त होने वाले वर्ण से भी हो सकता है अथवा वर्णन करना भी हो सकता है, वर्ण अर्थात् जाति (वर्ग) भी माना जा सकता है। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि ''तमिल में वर्णनै का अर्थ होता है– वर्णन और यह संस्कृत शब्द 'वर्णोती' से निकला है जिसका अर्थ वर्णन करना, विवरण देना या व्याख्या करना होता है।''

वर्णम् का प्रदर्शन किसी भरतनाट्यम् कार्यक्रम की पराकाष्ठा मानी जाती है। साथ ही नर्तकी की कला कौशल व सौंदर्य सृजन क्षमता का परिचायक माना जाता है। अभिनय का प्रदर्शन अधिक सूक्ष्मता से और जाति में अडवुओं का प्रयोग जटिल किन्तु प्रभावशाली होता है। वर्णम् के मुख्यतः छः भाग होते हैं– पल्लवी, अनुपल्लवी, चिट्टैस्वर, चिट्टैस्वर – साहित्य, चरणम् स्वर एवं चरणम् – स्वरसाहित्य। ''वर्णम् की शुरूआत लयबध्द शुध्द नृत्य अर्थात् त्रिकाल जाति से होती है, जो तीन लयों में की जाती है। इसके पश्चात् नर्तक/नर्तकी गीत के पंक्तियों के अर्थ प्रतिकात्मक रूप से अभिव्यक्त करते हुए उसके अर्थ समझाते हैं जिसे पल्लवी कहा जाता है। यही प्रक्रिया तीन अथवा चार बार दोहराई जाती है। प्रत्येक के मध्य में जाति भी की जाती है। इसके पश्चात् अनुपल्लवी किया जाता है। अनुपल्लवी के बाद मुक्ताई अथवा चिट्टैस्वर किया जाता है जिसमें स्वरों के आधार पर नृत्य रचना होती है। फिर इन्हीं स्वरों के प्रारूप में साहित्य की पंक्तियाँ निबध्द होती है।'' इसके पश्चात् वर्णम् के दूसरे चरण में (2nd half) चरणम्स्वर व चरणम्स्वर साहित्य किया जाता है। पद वर्णम् को चौक वर्णम् भी कहा जाता था। चौक का अर्थ होता है– धीमा लय। पहले वर्णम् विलंबित लय में होता था किन्तु वर्तमान में हमें बहुत कम ही वर्णम् विलंबित लय में दिखाई देते हैं, गति अधिक तीव्र होती है। पद वर्णम् भाव, राग एवं ताल का अच्छा मिश्रण प्रस्तुत करता है। पद वर्णम् मुख्य रूप से नृत्य के लिए और तान वर्णम् मुख्यतः संगीत समारोह में प्रयोग किया जाता है। इन दोनों की रचनाएँ अलग होती है। तान वर्णम् नृत्य के लिए उपयोगी नही होते क्योंकि तान वर्णम् में तानें अधिक होती है जो नृत्य के लिए उपयुक्त नही होता। वर्णम् के इन दो प्रकारों के अतिरिक्त 'दरू वर्णम' भी एक प्रकार माना जाता है।

वर्णम् के पश्चात पूर्ण रूप से अभिनय पर आधारित आइटम पदम् किया जाता है। ''पदम् का अर्थ है– पद। किसी पद को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करना।'' ''पदम् सात पंक्तियों का पद होता है जो कि तेलुगू, तमिल अथवा संस्कृत में होता है। यह विलंबित लय में प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रधान रूप से इसका विषय नायक एवं नायिका के प्रेम अथवा विरह, किसी दैवीय प्रेम पर अथवा मातृत्व प्रेम पर आधारित होता है।'' यहाँ भक्ति और श्रृंगार दोनों होता है। पदम् में नृत्त का कोई स्थान नही होता है। भरतनाट्यम् में पदम् एक ऐसा पद (आइटम) है जिसमें सूक्ष्मता पूर्ण भावों का प्रदर्शन करने की आवश्यकता होती है। जिसके लिए नर्तक/नर्तकी का अनुभवी होना भी अतिआवश्यक है। पदम् में प्रयुक्त वाक्यांशों के अर्थ को व्यापक रूप से व्यक्त किया जाता है। एक ही पंक्ति को अलग–अलग तरीके से प्रदर्शित किया जाता है।

भरतनाट्यम् नृत्य के मार्गम् का अंतिम अंग है– तिल्लाना। यह पूर्णतया 'नृत्त' (शुध्द नर्तन) के अन्तर्गत आता है। 'तिल्लाना' शब्द नाद उत्पन्न करने वाले तिल–ला–ना अक्षरों से निष्पन्न होता है।'' ऐसा माना जाता है कि वास्तव में तिल्लाना हिन्दुस्तानी संगीत की देन

है। हिन्दुस्तानी संगीत में प्रयुक्त होने वाले तराने से मुग्ध होकर विद्वानों ने कर्नाटक में तराने को तिल्लाना का रूप दिया। तिल्लाना की रचना 17वीं–18वीं शताब्दी में तंजौर भाइयों द्वारा, ओत्तुकाडु वेंकट कवि, महाराजा स्वातितिरूनाल एवं इसी तरह अन्य प्रसिध्द विद्वानों द्वारा की गयी थी। तिल्लाना शुध्द नृत्य की आनंदमय कल्पना है। यह भरतनाट्यम् शैली की सबसे सुंदरतम् रचना मानी जाती है। इसके गीत सरल तालबध्द बोलों से निर्मित होते हैं, इन्हीं गीतात्मक बोलों में खूबसूरती से नृत्य संरचना की जाती है। तेज गति से हाथ व पैरों की विविध क्रियाएँ एवं सिर, आँख, भौंह, गर्दन का चलन जैसे अन्य शारीरिक विन्यास नृत्य में आकर्षण उत्पन्न करते हैं। तिल्लाना में केवल लय व ताल का प्रदर्शन किया जाता है। तिल्लाना अंतिम चरण है अतः इसमें नर्तक/नर्तकी उस श्रेणी तक पहुंच चुके होते हैं जहाँ वे क्रियाओं को सरलता से एवं विस्तृत रूप से करने लगते हैं। तिल्लाना के तीन भाग होते हैं– पल्लवी, अनुपल्लवी एवं चरणम्। तिल्लाना की गति तीव्र होती है। यद्यपि यह पूर्णतः 'नृत्त' का भेद है, किंतु इसके अंत में साहित्य की कुछ पंक्तियों पर भक्ति प्रधान नृत्य किया जाता है। जिसमें ईश्वर, राजा अथवा रचयिता का उल्लेख होता है।

भरतनाट्यम् के मार्गम् की समाप्ति एक छोटे से श्लोक से किया जाता है। जिसमें ताल रहित संस्कृत के श्लोक प्रस्तुत किये जाते हैं। संपूर्ण वातावरण संगीतमय एवं धार्मिक होता है। किसी भी ताल एवं लय के बंधन से रहित, धीमी गति से केवल भक्तिपूर्ण श्लोक के अर्थ को अभिनीत किया जाता है। यह ईश्वर की आराधना के रूप में किया जाता है। वर्तमान में साधारणतः भरतनाट्यम् के मार्गम् में तिल्लाना के पश्चात् श्लोक का स्थान नही होता। तिल्लाना करने के उपरांत नटटुवनार द्वारा मंगलम् गाया जाता है जिसमें नर्तकी मंच पर आकर ईश्वर, गुरू एवं दर्शकों को आभार प्रकट करते हुए कार्यक्रम का समापन करती है।

इन पदों के अतिरिक्त पुष्पांजलि, कौतुवम, तोडयमंगलम्, कीर्तनम, जावलि और अष्टपदी जैसे अन्य पद भी प्रस्तुकरण का हिस्सा है जिसे प्रारूप के क्रम को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किया जाता है। प्रदर्शनकारी कलाओं की साधना के साथ–साथ इसके व्यवहारिक एवं सैध्दांतिक पक्षों का ज्ञान किसी भी कला को अधिक गहनता से समझने में सहायक होता है। भरतनाट्यम् नृत्य प्रदर्शन का प्रारूप नृत्त, नृत्य व नाट्य का संतुलित स्वरूप है। जिसका अनुसरण किसी भी नृत्य के मंचीय प्रस्तुतिकरण को संतुलन प्रदान कर सही पथ प्रदर्शित करता है। कलाकार का उद्देश्य केवल प्रदर्शन न होकर नृत्य की परम्परा और उसके महत्व को गहराई से समझना भी उसका ध्येय होना चाहिये।

संदर्भ सूची :

V. Subramaniyam, The Sacred and the Secular in India's Performing Arts, Ashish Publishing House, New Delhi-110027, page-85.

Pratibha Prahalad, Dances of India, Wisdom Tree, Ansari Road Darya Ganj, Delhi - 110002, page -58.

Sruthi Issue-74, November-1990, Erocon Tiles Company, Chennai, page no.-47.

Sruthi Issue-74, November-1990, Erocon Tiles Company, Chennai, page-48.

Sruti, Issue-78, March-1991, Erocon Tiles Company, Chennai, page no-47.

The dances in India, Foubion Bowers, Press, New York, 1953, page no-52.

Sruti, Issue-78, March-1991, Erocon Tiles Company, Chennai, page no-47.

Lalita Ramakrishna, The Varnam, Harman Publishing House, New Delhi-110028,1991, page no-1.

Anne Marie Gaston, Bharatanatyam from temple to theatre, page no-265.

Sruti. Issue-83, August-1991, Erocon Tiles Company, Chennai, page-36.

Foubion Bowers, The dance in India, Columbia University Press, Newyork-1953, page no- 54.